ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

तिथि–10 फरवरी 2018
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, ११८
युगाब्द-५११८, अंक-९७, वर्ष-११
माघ मास, विक्रमी २०७४ (फरवरी 2018)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः। नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥ -ऋ० १। ४। १४। ४

व्याख्यान-हे परमैश्वर्ययुक्तश्वर! आप इन्द्र हो। हे मनुष्यो! [(न यस्य द्यावापृथिवी अन्तमानशुः)] जिस परमात्मा का अन्त-'इतना यह है' न हो। उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता। तथा दिव अर्थात् सूर्यादिलोक, सर्वोपरि आकाश तथा पृथ्वी मध्य निकृष्ट लोक ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते। क्योंकि (अनुव्यचः) वह सबके बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है। तथा (न सिन्धवः) अन्तरिक्ष में जो दिव्य जल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते। (नोत स्ववृष्टिं मदे) वृष्टि-प्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते। हे परमात्मन्! आपका पार कौन पा सके? क्योंकि (एकः) एक-असहाय अपने से भिन्न स्वसामर्थ्य से ही (विश्वम्) सब जगत् को (आनुषक्) आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते, और (चकृषे) -कृतवान्-आपने ही उत्पन्न किया है। फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें? तथा (अन्यत्) आप जगत्रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो, किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन धारण और लय यथाकाल करते हो। इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है॥

सम्पादकीय

छात्रों में हिंसक प्रवृति

-आचार्य सतीश

बालक किसी भी राष्ट्र का भविष्य होते हैं और जैसा बालकों का निर्माण किया जाता है वैसा ही राष्ट्र का भविष्य बनता है। बालकों के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण योगदान शिक्षा का होता है और वर्तमान में शिक्षा विद्यालयों में दी जाती है अर्थात् जैसा वातावरण विद्यालयों का होगा, जैसी उनमें शिक्षा दी जाएगी वैसे ही बालकों का निर्माण होगा और वैसा ही राष्ट्र बनेगा। वर्तमान के बालक ही कल बड़े होंगे, युवा होंगे, प्रौढ़ होंगे तथा परिवार से लेकर राष्ट्र तक को संभालेंगे, यह निश्चित है ऐसा होता ही होता है यह क्रम कभी भी विच्छेद नहीं होता है, चाहे कोई कुछ भी प्रयास कर ले।

लेकिन पिछले कुछ माह में लगातार ऐसी घटनाएं घट रही हैं। जिससे जागरूक समाज बड़ा चिंतित है और चिंता होनी भी चाहिए। हम देख रहे हैं कि विद्यालयों में ही बालकों की प्रवृति इतनी हिंसक हो गई है कि वे न केवल एक-दूसरे की हत्या, मार-पीट अपितु अध्यापकों तक की हत्या कर देते हैं व इस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं कि उसके बड़े गंभीर परिणाम निकलते हैं। और ये सब घटनाएं भी ऐसे छोटे-छोटे कारणों को लेकर होती हैं कि जिसका कोई औचित्य ही नहीं और वैसे भी बालकों के लिए ऐसा कोई कारण होता ही नहीं है जिसके कारण उनमें प्रकार की हिंसा पनपे।

इन सबके पीछे क्या कारण हो सकता है? क्या हमारी व्यवस्था में कमी है? क्या हमारे द्वारा दी जा रही शिक्षा में कमी है? क्या शिक्षा की विषय वस्तु ठीक नहीं है? क्या माता-पिता और शिक्षक ही इसके लिए दोषी हैं या बालक स्वयं ही ऐसी प्रवृतियां बना चुके हैं।

अगर विचार करें तो बालक को जैसा वातावरण, जैसी शिक्षा, जैसा परिवेश और जैसा मार्गदर्शन मिलता है वह सामान्यता वैसा ही बनता है। अर्थात् बालकों में ऐसी प्रवृतियों के पनपने में वह वह स्वयं नहीं अपितु उसको दी जा रही शिक्षा, शिक्षा की विषय वस्तु, उसके पालन-पोषण का उद्देश्य व व्यवस्थाएं ही दोषी हैं। शिक्षा एक साधन है मनुष्य को संस्कारित बनाने का। लेकिन वर्तमान में शिक्षा माध्यम बन गई है मात्र जीवन यापन का। शिक्षा का उद्देश्य क्या है? अर्थात् शिक्षा कैसी होनी चाहिए और शिक्षक क्या सिखाए इसके लिए निरूक्तकार यास्काचार्य निर्देश देते हैं- "**आचारं ग्राह्ययति आचिनोत्यार्थान् आचिनोति बुद्धिमिति वा॥**" अर्थात् आचार्य का कार्य है- आचार का ग्रहण कराना, अर्थों का व बुद्धि का संचय कराना। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक सिद्धान्त में शिक्षा के तीन उद्देश्य हैं- 1. विद्यार्थी को सदाचारी बनाना 2. विद्यार्थी के मन मे पदार्थों के बोध का संचय कराना 3. तथा विद्यार्थी में बुद्धिशक्ति का पैदा करना। यदि इन्हीं को लक्ष्य मानकर शिक्षा

शेष अगले पृष्ठ पर

संपादकीय का शेष...

प्रदान की जाती है तो शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है। परन्तु आज शिक्षा का सारा जोर केवल पदार्थों के बोध का संचय कराना रह गया है अर्थात् विद्यार्थी ज्ञान अर्जित तो कर लेता है लेकिन सदाचार के बिना न तो उसका ठीक से उपयोग कर पाता है और न ही बुद्धि के विकास के बिना उसकी पूरी उपयोगिता जान पाता है और वह ज्ञान किसी भी प्रकार से केवल जीविकोपार्जन का माध्यम बन जाता है। शिक्षा के सम्पूर्ण उद्देश्यों को छोड़ हमने केवल ज्ञानार्जन व जीविकोपार्जन को ही शिक्षा का उद्देश्य बना लिया है। ऐसी स्थिति में न तो ज्ञान का सदुपयोग हो पाता है और न बुद्धि व विवेक के बिना उससे मानवजाति का हित हो पाता है ब्लकि कुछ लोगों की स्वार्थ पूर्ति का माध्यम बन जाता है। ऐसी शिक्षा केवल भौतिक सुखों व धन के लिए संघर्ष करना सिखाती है, परस्पर स्पर्धा को ही प्रेरित करती है, धनी को निर्धन की विवशता का लाभ उठाने के लिए ललचाती है और मनुष्यों को अलग-अलग विरोधी समूहों में बांट देती है और इसी का परिणाम होता है कि माता-पिता बालकों की योग्यता केवल इससे आंकते है कि वह उपरोक्त कार्यों को करने में कितना सक्षम है, उसी के लिए उन पर दबाव बनाया जाता है और विद्यार्थी का एक मात्र उद्देश्य अपने ही सहयोगियों के साथ सामंजस्य नहीं अपितु उन्हें पछाड़ने का रह जाता है। ऐसी स्थिति में उसका भाव अन्यों के प्रति सहयोग का नहीं अपितु केवल प्रतिस्पर्धा का रह जाता है और यही भाव उसमें दूसरे के प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं। और जब घृणा उत्पन्न होती है तो उसी से या तो हिसंक प्रवृतियां जन्म लेती हैं या अवसाद की स्थितियां पैदा हो जाती हैं जो आजकल अधिकांश विद्यार्थियों में हो भी यही रहा है। माता-पिता, शिक्षकों व व्यवस्था ने बालक की सफलता का पैमाना उसके द्वारा वर्तमान में प्राप्त किए जाने वाले अंकों को मान लिया है जबकि व्यवहार में प्रत्यक्ष रूप से यह देखा भी जा रहा है कि जीवन में सफलता का सम्बन्ध केवल परीक्षा के अंको से नहीं हैं। समाज में भी युवक की सफलता का पैमाना उसके द्वारा कमाए गए धन से मान लिया है जबकि प्रत्यक्ष में देखते हैं कि युवक का जीवन सुख पूर्वक बीतेगा इसका धन से सीधा सम्बंध नहीं है केवल धन ही आधार नहीं है।

अत: शिक्षा के उद्देश्यों को ठीक-ठीक न समझ पाने के कारण आज के बालकों का भविष्य उज्जवल नहीं अपितु अनेक बार धूमिल हो जाता है और अनेक मेधावी बालक इसके शिकार हो जाते हैं।

शिक्षा कैसी हो? जैसा कि यास्काचार्य ने बताया है कि वस्तुओं के ज्ञान के साथ उन्हें सदाचारी बनाएं, बुद्धि का विकास करें। पुस्तक पढ़ लेने से ज्ञान तो हो सकता है लेकिन आवश्यक नहीं कि उसमें बुद्धिशक्ति भी अवश्य पैदा होगी। उसके लिए मनन की आवश्यकता है, विवेक पैदा करने की आवश्यकता है और उस ज्ञान का उपयोग भी तभी होगा जब शिक्षा जीवन के उद्देश्यों को बताती हो, जो जीवन के उस चरण के रहस्यों को भी उजागर करती हो जहाँ मृत्यु के बाद प्रवेश किया जाता है। शिक्षा का कार्य साम्प्रदायिकता के अज्ञान को दूर करना, दूसरों के लिए जीना, मानवता का बोध कराने वाले समस्त गुणों को कार्य में लाना होना चाहिए। जब बालक ऐसी शिक्षा प्राप्त करेगा तो इसके अन्दर अन्यों के प्रति स्नेह की भावना विकसित होगी फिर वह अपने ही सहपाठी से ईर्ष्या नहीं करेगा अपितु उसका सहयोगी बनेगा। माता-पिता, शिक्षक, समाज व शासन का कर्तव्य बनता है कि राष्ट्र के उज्जवल भविष्य के लिए अपने बालकों को इस प्रकार शिक्षित करें जिससे गुरुग्राम, लखनऊ, यमुनानगर आदि स्थानों जैसी दु:खद घटनाएं न हों।

आज धर्म के नाम पर मत-पंथों की शिक्षा दी जा रही है। धर्म के वास्तविक लक्षणों की शिक्षा न देकर धर्म निरपेक्षता के नाम पर विभिन्न मत-पथों के सिद्धान्त सिखाए जाते हैं। धर्म के मूल-भूत सिद्धान्तों को जनाने के लिए किसी मत-पन्थ का नाम लेने की आवश्यकता नहीं है बल्कि वे सिद्धान्त तो सर्वभौमिक व सार्वकालिक हैं उन्हीं को सिखाने की आवश्यकता है, उन्हें मत-पंथों में बांटकर सिखाने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरी और वर्तमान की व्यवस्था में माता-पिता व समाज ने बालकों को शिक्षित करने का जो सारा भार शिक्षकों व विद्यालयों पर डालकर उसका व्यवसायीकरण कर दिया है वह भी बड़ा हानिकारक है। ब्राह्मणकार लिखते हैं- **मातृमान्, पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।** अर्थात् माता-पिता व शिक्षक, इन तीन का दायित्व है बालक को शिक्षित करने का। आज माता-पिता ने बालक को शिक्षित करने का दायित्व छोड़ दिया और सारा दायित्व शिक्षक पर आ गया तो इसका परिणाम यही हुआ कि निरुक्तकार ने शिक्षा के जो तीन उद्देश्य बताए थे उनको पूरा ही नहीं किया जा सका और शिक्षा रह गई अधूरी। अत: माता-पिता भी जब शिक्षक के साथ अपने बालकों को शिक्षा देने के दायित्व का निर्वाह करेंगे तभी बालकों की शिक्षा ठीक से हो पाएगी और वे राष्ट्र के सभ्य नागरिक बन सकेंगे। उसके लिए आवश्यक है कि माता-पिता पहले स्वयं शिक्षा के उद्देश्यों को ठीक-ठीक समझें और बालकों को केवल धन कामने की मशीन न बनाएं। आज माता-पिता बालक को इन्जिनियर, डॉक्टर, सी.ए., अधिकारी आदि बनाने के लिए तो दिन-रात सघंर्ष करते है लेकिन शिक्षा के माध्यम से कैसे उसे प्राणीमात्र के लिए उपयोगी मनुष्य बनाया जाए यह प्रयास नहीं करते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि वह बालक या तो पूरी तरह बर्बाद हो जाता है या धन कमाने की मशीन बन जाता है, वह भौतिक सुखों को पा लेता है लेकिन न तो स्वयं जीवन के उद्देश्य को समझ पाता है और न परिवार, समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी बन पाता है, केवल मरने के जीवन जीता है। हाँ जिनको सही प्रकार की शिक्षा परिवार, समाज व विद्यालय से मिलती है वे युवक-युवतियां अवश्य ही जीवन के उद्देश्य को समझकर जीवन को सार्थक कर ले जाते हैं। ऐसे ही युवाओं-युवतियों से परिवार, समाज और राष्ट्र बनता है तथा चलता है।

आर्यों/आर्याओ! आओ अपने ऋषियों के सिद्धन्तों को जानकर अपने आने वाली पीढ़ी को भी उसी में शिक्षित करें ताकि राष्ट्र सुरक्षित हो।

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	15 फरवरी	दिन-वीरवार	मास-फाल्गुन	ऋतु-वसंत	नक्षत्र-श्रवण
पूर्णिमा	1-2 मार्च	दिन-वीर-बुधवार	मास-फाल्गुन	ऋतु-वसंत	नक्षत्र-मघा
अमावस्या	17 मार्च	दिन-शनिवार	मास-चैत्र	ऋतु-वसंत	नक्षत्र-पुर्वाभाद्रपदा
पूर्णिमा	31 मार्च	दिन-शनिवार	मास-चैत्र	ऋतु-शिशिर	नक्षत्र-उत्तराषाढ़ा

मन की बात

आचार्य अशोकपाल, चन्ड़ीगढ़

ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन अनादि सत्ता हैं। यह आर्यों का अकाट्य सिद्धान्त है। ईश्वर व जीव चेतन सत्तायें हैं और प्रकृति जड़ सत्ता है। प्रथम ईश्वर प्रकृति में विकृति उत्पन्न कर सृष्टि का निर्माण करता है एवं चेतन, एकदेशीय, परिसीमित सत्ता जीव को कर्मानुसार प्रकृति जन्य शरीर प्रदान करता है, जीव जैसा कर्म करता जाता, ईश्वर उसे वैसा ही फल प्रदान करते जाते हैं। जन्म-जन्मान्तर, अनादिकाल से अनादिकाल तक यह प्रकल्प चलता आ रहा है और चलता रहेगा।

प्रश्न यह है कि मन की क्या सत्ता है? क्या मन बात करता है? क्या मन अल्लाह है जो पैगाम भेजता है? क्या मन और आत्मा जीव हैं कि आत्मा की आवाज आज मन की बात बन गई? मन एकदेशी है अथवा सर्वव्यापक? जड़ है अथवा चेतन? मन साकार है अथवा निराकार? और भी अनेक यक्ष प्रश्न हैं।

वैसे समाज में मन के संबन्ध में अनेक उक्तियां प्रसिद्ध हैं जैसे "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत, मेरा मन नहीं मानता!, मेरा मन खराब है, मेरी मर्जी- मन मर्जी, मन डोले-तन डोले," मन नहीं हो गया जैसे मालिक हो गया, मौलवी हो गया। फतवा जारी करता है और हम "मन की बात" मानते चले जाते हैं। हमारे वश में तो कुछ है ही नहीं सब मन ही कर रहा है मन ही करवा रहा है। मन मानों शैतान, जो गलत काम भी करवाता जाता है और हम नशे में चूर "मन की बात" सुनते जाते और अनुसरण करते जाते हैं। मन तो मदारी है और हम बन्दर (जानवर)! मन जादूगर बन हमें सम्मोहित कर जो चाहे करवाता है! मन की बात कोई टाल नहीं सकता। मन जिसे उचित कहे वही उचित और जो मन-माफिक नहीं वह गलत! आश्चर्य है! कोई सवा-मन, कोई मनचला कह सकता है कि मन की कोई सत्ता नहीं होती! यह तो एक शिगुफा है, कल्पना मात्र है। पर एक आर्य बुद्धिशील, विवेकशील होता है। संसार की समस्याओं, परेशानियों, कठिनाईयों, दुखों का निवारण करना उसका कर्त्तव्य है। आईये विचारते हैं।

शास्त्रकार मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार अर्थात् बुद्धि चतुष्टय को प्रकृति जन्य बताते हुए कहता है कि सत्, रज, तम अर्थात् प्रकृति से ही मन का निर्माण होता है। इसीलिए कहा जाता है कि जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन। अन्न से मन का निर्माण होता है। मन प्रकृति से बना हुआ है। प्रकृति जड़ है तो जड़ प्रकृति से निर्मित जड़ मन चेतन नहीं हो सकता। जड़ मन स्वमेव कोई गति परिवर्तन, रूप परिवर्तन, दिशा परिवर्तन नहीं कर सकता। विज्ञान का भी सिद्धान्त है कि जड़ वस्तु उत्प्रेरक के बिना कुछ भी नहीं कर सकती। मन भी जड़ वस्तु है। फिर मन की बात केवल मात्र कोरी कल्पना है, मन कल्पना नहीं है। मन की निश्चत सत्ता है और "मन की बात" कोरी कल्पना!

हाँ, मन एक यन्त्र है जो ईश्वर द्वारा जीवात्मा को उपहार स्वरूप प्रदान किया गया है। जीवात्मा के द्वारा किसी विषय पर मनन करता है, चिन्तन करता है। बुद्धि से निश्चयात्मक्ता को प्राप्त होता है। अच्छा! मन की बात तो कोई बकवास है पर आत्मा की आवाज? आत्मा की आवाज के नाम पर भी इतिहास में बड़े-बड़े ठगों ने ठगा है। ऐसे लोगों ने "आत्मा से परमात्मा" का शिगुफा गढ़ा है, जबकि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, असीमित, सर्वशक्तिमान, अजन्मादि है जबकि जीवात्मा एकदेशी, अल्पज्ञ, परिसीमित, अणु-स्वरूपी, अल्पसार्मथ्य वाला, कर्मानुसार ईश्वरीय कृपा से जन्म-जन्मान्तर को पाने वाला है। ऐसे भी स्वयंभू ईश्वर बने जनों ने "आत्मा की आवाज" रूपी सिद्धान्त को ही परम-प्रमाण मान जन-सामान्य पर थोप दिया।

हाँ! यह स्पष्ट है कि मनुष्य का आत्मा सत्य-असत्य को जाननेहारा है, पर हठ, दुराग्रह, स्वार्थ एवं अज्ञान के कारण असत्य पर झुक जाता है। इसलिए अज्ञानी, अल्पज्ञ आत्मा की आवाज को परम-प्रमाण नहीं माना जा सकता! यही आर्य समाज के नियम में व्याख्यायित करते हुए ऋषि दयानन्द कहते हैं कि "सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।" यहाँ आत्मा की आवाज का प्रयोग प्रीतिपूर्वक ही हो सकता है। नियम, कानून, कायदा बनाकर नहीं। पर जिसने इसे कानून बनाने, अल्लाह का पैगाम बताने का जामा पहनाया, उसने मनुष्य जाति को अज्ञान, अविद्या के घोर रसातल में धकेल दिया। अविद्या जो न करवाये कम है।

विद्या यही है **"परम प्रमाणं श्रुतिः"** मनुष्य मात्र के लिए वेद ही परम प्रमाण है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्याा से जाने जाते हैं, उनका सबका आदिमूल परमेश्वर है। इसीलिए आईये अब "मन की बात" नहीं "वेद की बात" अब मनचले नहीं "वेदमत चलें", अब आत्मा की आवाज नहीं "परमात्मा की आवाज" पर भरोसा करें, विश्वास करें।

हजारों वर्षों से "मन की बात", आत्मा की बात" के नाम पर हम सब एक-दूसरे से छल कर रहे हैं, अज्ञान में ही सही। अब और नहीं। बस! बहुत हो चुका। अब मन न डोले, मन को जीतो-योग से, प्राणायाम से। इन्द्रियों पर लगाम लगाओ, जितेन्द्रिय बनो, आर्य बनो, क्योंकि **"आर्य ईश्वर पुत्रः"** अर्थात् आर्य ही ईश्वर पुत्र है। आर्य बन, ईश्वर पुत्र बनिये, मनचला रूपी रूढ़िवादिता को दग्धबीज करें। ईश्वर हमें आर्य पूर्वजों के पथ पर चलने का, वेद पथ, धर्मपथ, राष्ट्रपथ पर आरूढ़ रहने का बल प्रदान करे।

संध्या काल

फाल्गुन मास, वसंत ऋतु, कलि-5118, वि. 2074
(1 फरवरी 2018 से 1 मार्च 2018)
प्रातः कालः 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 30 मिनट से (6.30 P.M.)

माघ चैत्र, वसंत ऋतु, कलि-5118-19, वि. 2074-75
(3 जनवरी 2018 से 31 जनवरी 2018)
प्रातः कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 30 मिनट से (6.30 P.M.)

हमारा आनुवांशिक रोग– आपसी द्वेष

-आर्य सोनू, कैथल

महाभारत काल में गान्धार नरेश शकुनी द्वारा बोया गया ईर्ष्या द्वेष का बीज उस समय में ही वट वृक्ष बन चुका था जिस कारण महाभारत का युद्ध हुआ। इस वीर धरा ने अपने ही रणवीरों को अपनों के ही हाथों लड़ते–मरते देखा। वैदिक व्यवस्था नष्ट हुई। रक्त सम्बन्धों, कुल एवं मूल्यों का कोई मोल न रहा। भाई–भाई, दादा–पोता, मामा–भान्जे, गुरु–शिष्य व न जाने कितने ही सगे सम्बन्धी स्वजनों से लड़कर रणभूमि में शयन कर गए।

शकुनि का वह पेड़ हालॉकि महाभारत काल में ही तरुण हुआ किन्तु हजारों वर्षों बाद आज वह प्रौढ़ हो चुका है। वह ईर्ष्या–द्वेष का वृक्ष आज भी भारतीयों को भरपूर फल दे रहा है, जिसके कारण लगभग 800 वर्ष का समय इस धरा ने लुटते–पिटते व चीत्कार करते हुए गुजारा है। इस वृक्ष के फल खा–खाकर शायद हम भारतीय एक आनुवांशिक रोग से ग्रस्त हो चुके हैं, जो अब नासूर बन चुका है। इस भयंकर रोग का नाम है **"इर्ष्या–द्वेष, आपसी फूट"**।

महाभारत के बाद एक बार फिर ईर्ष्या–द्वेष नामक फल का प्रभाव देखने को मिला। 12वीं शताब्दी में, इस काल में वीर धरा का वीर पुत्र दिल्ली पर गद्दीनशीन था। नाम था राय पिथौरा सम्राट पृथ्वी राज चौहान। जिसके नाम से न केवल भारत के अन्य नरेश भय खाते अपितु म्लेच्छ (मुसलमान) भी रणभूमि से भाग खड़े होते थे। किन्तु नियति को शायद इस धरा का वैभव स्वीकार ही न था। ईर्ष्या बढ़ी और भारत नरेश बनने की चाह में दुष्ट जयचन्द ने मोहम्मद गौरी को निमन्त्रण दे डाला। हालॉकि तराईन के प्रथम युद्ध 1191 ई॰ में चौहान ने म्लेच्छों को खूब धूल चटाई किन्तु गौरी को माफी देकर वेदाज्ञा का उल्लंघन किया और 1192 तराईन के दूसरे युद्ध में आपसी फूट के कारण पराजय का मुँह देखना पड़ा। चौहान मारा गया। संयोगिता (चौहान की पत्नी) और न जाने कितनी महिलाओं के साथ भारतभूमि को भी मुसलमानों के अत्याचार सहन करने पड़े। 16वीं शताब्दी आते–आते शकुनि द्वारा सिंचित वृक्ष के द्वेष फल ईर्ष्या और द्वेष का रोग भारतीयों में स्थाई होने लगा था। इसी के प्रभाव से रणभूमि में 80–80 घाव खाकर भी डटे रहने वाले राणा सांगा ने बाबर को निमन्त्रण भेज दिया। बाबर ने आते ही 1526 ई॰ में दिल्ली सम्राट अफगान इब्राहीन लोदी को पानीपत के प्रथम युद्ध में हराया किन्तु इसके ठीक एक वर्ष बाद 1527 ई॰ में खानवा के युद्ध में राणा सांगा को भी पराजित किया।

हा दुर्भाग्य! कहां आर्यों का चक्रवती राज्य और कहां हम म्लेच्छों से आपसी फूट के कारण एक–एक करके हारते गए। राणा सांगा मारा गया किन्तु वीर धरा बांझ नहीं हुई। राणा सांगा के ही पौत्र कुछ समयोपरान्त मातृभूमि की रक्षा हेतु उठ खड़े हुए। उधर भारत पर मुगल बाबर के पोते अकबर का शासन लगभग स्थाई हो चुका था। महाराणा प्रताप सेनापतित्व बल, अस्त्रविद्या, स्वाभिमान व शौर्य में किसी भी तरह से अपने दादा राणा सांगा से कम नहीं थे। अद्‌भुत शौर्य (अनेकों शत्रुओं से भी भयभीत न होना) के कारण प्रताप कभी भी अकबर व उसकी सेना के समक्ष डरे नहीं और झुके नहीं। किन्तु रगों में स्थाई होने वाला ईर्ष्या–द्वेष का रोग अब पूर्णत: आनुवांशिक बन चुका था। इसी कारण मानसिंह ने तो राणा प्रताप के विरुद्ध अकबर का साथ दिया ही, साथ ही प्रताप का सगा भाई भी (शक्तिसिंह) अकबर से जा मिला। 1576 ई॰ हल्दी घाटी के युद्ध में प्रताप को अकबर के विरुद्ध अपने ही बन्धु–बान्धबों से लड़ना पडा। शक्तिसिंह अन्त में प्रताप से जा मिले। यह महाराणा प्रताप ही थे जो अपनी वीरता और शौर्य से ताउम्र अकबर से लड़ते रहे कभी हारे व झुके नहीं। किन्तु इस आनुवांशिक रोग के कारण कभी अकबर को हरा ही न सके। फिर दुष्ट औरंगजेब के समय में जब हिन्दुओं पर अत्याचार बढ़े तो वीर भूमि से माँ की रक्षा हेतु कई लाल निकले। छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह जी और उनके पश्चात् वीर बन्दा बैरागी। किन्तु महाभारत से अब तक पीढ़ी दर पीढ़ी चले आए इस रोग ने भारतीयों को छोड़ने का अब तक नाम भी न लिया।

गुरु साहब ने औरंगजेब (मुगलों) के विरुद्ध कई युद्ध लड़े किन्तु कभी मुख्यत: पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोविन्द सिंह जी का साथ न दिया। उल्टा अनेक बार मुगलों को सहायता पहुँचाई। गुरु जी अकेले ही खड़ग–खड़काते रहे और चमकौर के युद्ध में (1704 ई॰) मुगलों की 10 लाख सेना पर मात्र गुरु के 40 सिंह भारी पड़ गए। गुरु जी के दो बड़े पुत्र (अजीत सिंह व झुझार सिंह) गंगु ब्राह्मण की गद्दारी के कारण पकडकर जिन्दा दीवार में चिनवाए गए। दुनिया में उदाहरण नहीं हैं जिसमें आपने चार पुत्र, पिता व स्वयं को देश व धर्म पर कुर्बान किया हो।

गुरु जी के बाद उनकी प्रेरणा से एक राजपूत वैष्णव संन्यासी संन्यास छोड़कर रणभूमि में उतरा जिसने अति अल्प समय में ही पंजाब व उसके आसपास के बड़े क्षेत्र पर मुगलों का सफाया कर के अपना राज्य स्थापित कर लिया। गुरु गोविन्द का साथ देने वाले राजपूतों ने शायद धर्म व जात के कारण वैरागी का साथ दिया किन्तु बाद में मुगलों की कूटनीति के कारण हिन्दू– सिख उनके विरुद्ध हो गए और मात्र 740 साथियों के साथ बन्दा को घेरकर पकड़ लिया गया और दिल्ली ले जाकर बड़ी निर्ममता से सबको शहीद कर दिया गया। किन्तु तब से आज तक भी हम आपसी फूट में उलझे हुए हैं। प्रथम तो बहुत सिख बन्दा बहादुर से अलग होने में उन्हीं को दोषी मानते हैं और हिन्दू सिखों को दोष देते हैं। दूसरा वैरागी (नाम– माधोदास) गुरु नहीं थे। सिखों से उपेक्षित रहे व हिन्दुओं से भी उपेक्षित रहे क्योंकि अधिकतर हिन्दू उनका नाम तक नहीं जानते। फिर भी आज बहुत से सिख व हिन्दू उन्हें सिख या हिन्दू घोषित करने के चक्कर में पड़े हैं। वह जो भी हो, था तो भारत वीर, किन्तु इस विवाद में उसे पूर्णतया भुला दिया गया है। बन्दा वैरागी आज एक विस्मृत नायक बन कर रह गए हैं। जो भारत के वीरों व वीर जननी भारत भूमि का खुला उपहास है। किन्तु आपसी फूट का यह सिलसिला कभी रूका नहीं हैं। अंग्रेज आए और इसी

शेष अगले पृष्ठ पर

पिछले पृष्ठ का शेष..

आपसी वैमनस्य का लाभ उठाकर भारत सम्राट बन गए। स्वयं अंग्रेज इतिहासकार मानते हैं कि वे भारत के किसी भी राजा को तलवार के बल पर जीत नहीं सके। उन्होंने पूरे भारत को **"फूट डालो व राज करो"** से विजित किया था, आज भी यह जारी है। 1947 ई॰ में देश आजाद हुआ किन्तु काले अंग्रेज राजा बन गए। भारत को अंग्रेजों से अधिक लूटा तथा जाति व मत-पंथ के नाम पर लोगों में फूट व द्वेष को और अधिक भड़काया। आज भी पूरा भारत धर्म व मत-पंथ, सम्प्रदायों के नाम पर, धर्म में जाति के नाम पर, जाति में गोत्रों के नाम पर और एक गोत्र में भी खापों आदि के नाम पर लड़ रहे हैं। प्रान्तों व भाषा के नाम पर हम अलग-अलग बंटे हुए हैं। सामान्य, दलित, पिछड़ा, उच्च और निम्न वर्ग में बंटे हैं। इसी कारण विदेशी विखण्डनकारी ताकतों के षड़यन्त्र कामयाब हो जाते हैं। बड़ी आसानी से भारत में उपद्रव करवा दिये जाते हैं। कारण केवल आपसी द्वेष। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आपसी फूट एक आनुवांशिक रोग बन चुका है। अब छोटी-छोटी गोलियों से ईलाज नहीं होगा पूरी शल्य चिकित्सा करनी होगी। माना कि ईष्या-द्वेष, आपसी फूट आदि का अन्धकार बहुत घना है किन्तु अन्धकार को चीरने के लिए मात्र एक किरण की जरूरत होती है। वह शल्य चिकित्सा और प्रकाश किरण क्या है? वह है वेद विद्या की शिक्षा। जो कहती है कि **"मनुर्भवः"** अर्थात् मनुष्य बनो। वेद ही कहता है कि भाई-भाई से द्वेष न करें। भाई-बहन से व अन्यों से भी कभी द्वेष न करें और जब तक इस देश में वैदिक शिक्षा रही द्वेष हुआ भी नहीं। देख लीजिए रामायण काल को। जब मां ने पुत्र मोह में एक बेटे को वन भेज डाला ताकि दूसरा राजा बने। लेकिन दूसरे को ज्ञात हुआ कि मां के कारण ऐसा हुआ तो बिना विचारे राज्य को ठोकर मार दी और भाई को लाने चल दिया वन की ओर। भाई तो पिता आज्ञा निभाने के कारण न लौटा किन्तु छोटे ने उसकी चरण पादुकाएं ली और भाई के आने तक उसके प्रतिनिधि के रूप में राज्य किया। बड़े भाई ने भी बिना द्वेष वन गमन किया और वनवास पूर्ण किया।

दूसरी तरफ लंका में रावण, दुष्ट था, फिर भी दोनों छोटे भाई विभिषण और कुम्भकरण उसका साथ देते रहे द्वेष नहीं किया। अन्त में भी विभीषण ने रावण को नहीं त्यागा अपितु रावण ने उसे देश निकाला दिया। यह है वेद की विद्या। इस विद्या के बल पर ही ऐसी व्यवस्थाएं बनाई जा सकती हैं और भारत भूमि से शकुनि द्वारा लगाए गए द्वेष के वट वृक्ष को जड़-मूल सहित उखाड़ सकते हैं व भारतीयों के आनुवांशिक रोग (आपसी फूट) का उपचार किया जा सकता है।

मनुर्भवः

-आचार्य सतीश

मनुष्य का मननशील होना आवश्यक है, यदि वह चिन्तन-मनन करने में दक्ष नहीं है तो पूर्ण रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करने में सक्षम नहीं होता है। अतः एक प्राणी मात्र को मनुष्य बनने की प्रक्रिया में उसके लिए मननशील, विवेकशील होना आवश्यक है और जो भी उसके ऐसा होने में बाधक है वह सब उसके लिए त्याज्य है तथा जो उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित करते हैं वे सब उसके ग्राह्य होने चाहिए। आज जब हम समाज की पस्थितियाों का आकलन करते हैं तो एक ओर अवगुण ऐसा दिखाई देता है जो समाज के अनेक लोगों को मनुष्यता से पशुता की ओर लेजा रहा है और वह अवगुण है व्यसनों का, अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का। समाज का बहुत बड़ा वर्ग इसकी चपेट में जाने-अनजाने आ चुका है। अनेकों को यह पता ही नहीं होता और वे इससे ग्रसित हो जाते हैं। कितनी ही प्रकार के व्यसन व्याप्त हैं, कितने ही प्रकार के अभक्ष्य पदार्थ हैं जो मानव जाति के नहीं हैं, लेकिन जिनका सेवन मनुष्य कर रहे हैं स्थिति बड़ी भयानक और भयावह है। मनुष्य बने रहने के लिए, बनने के लिए उसकी बुद्धि, विवेक ठीक से कार्य करती रहे यह आवश्यक है। लेकिन ये व्यसन, यह खान-पान उसे ऐसा करने से रोकता है। कितने ही नशीले पदार्थ हैं जो बालकों तक में प्रचलित हो चुके हैं, शराबादि का तो इतना व्यापक प्रचलन हो चुका है और इतनी अज्ञानता इस पर फैल चुकी है कि चिकित्सक तक लोगों को शराब पीने के लिए प्रेरित करते हैं। जब ऐसी स्थिति बन जाये तो मनुष्यता कहां बचे, मानवता कहां बचे और यही हो रहा है। इन व्यसनों के कारण ही आपस में झगड़े आए दिन होते रहते हैं, अधिकांशत् यही अनेक अपराधों का सबसे बड़ा कारण है। इन्हीं के कारण आज की मानव जाति का खान-पान इतना दूषित हो चुका है कि मानव मांस तक का व्यापार चलता है। कहां प्रकृति द्वारा प्रदत्त सुगन्धित, पौष्टिक, रुचिकर भोज्य पदार्थ और कहां बदबूदार मांसादि पदार्थ। लेकिन मनुष्य के गुणों को छोड़ते-छोड़ते पशुओं के व्यवहार से भी नीचे चले गए। पशु तो आवश्यकता पड़ने पर ही अपने भोजन के लिए दूसरे प्राणी का हरण करता है और मनुष्य तो केवल अपने मनोरंजन के लिए ही पशुओं में भी घृणित कार्य करता है। मनुष्य बनने के लिए व्यसन रहित और शुद्ध सात्विक आहारी होना आवश्यक है। इसके बिना वह मनुष्य कोटि में नहीं गिना जा सकता है। तभी वह पहले बताए गए मनुष्यों के गुणों को ठीक से धारण कर सकता है। वेद में जब मनुष्य बनने के लिए कहा गया है तो इन गुणों को धारण करके ही बना जा सकता है अन्यथा तो वह भी प्राणीमात्र बनकर रह जाता है। सभी पशु-पक्षी ईश्वर प्रदत्त अपने निश्चित व्यवहार से इतर व्यवहार नहीं करते लेकिन यह मनुष्यरूपी प्राणी परमात्मा द्वारा प्रदत्त व्यवहार को छोड़कर अनेक प्रकार के अवगुणों को धारण कर लेता है और मनुष्यता की कोटि से अपने आपको पशुकोटि में पहुँचा देता है। बुद्धि और विवेक का प्रयोग होना चाहिए-उत्थान के लिए, सर्वहित के लिए, संसार में सभी के सुख के लिए, इस संसार को ऐसा बनाने के लिए जिसमें सभी प्राणी सुख की अनुभूति प्राप्त करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ें। लेकिन मनुष्य से इतर दोषों को धारण कर हम जाते चले जाते हैं- पतन की ओर, सर्वनाश की ओर, युवकों-युवतियों को कष्टों की ओर धकेलने की ओर। तो आइए व्यसन रहित जीवन को धारण कर मनुष्यता की ओर बढ़े, समाज को बढ़ावें, वेद के आदेश **मनुर्भवः** का पालन करें और अन्य से भी करावें। मनुष्य बनने के लिए जिन गुणों को धारण करना होता है उनमें यह भी एक अत्यावश्यक गुण है और मनुष्य बनना ही आर्य बनना है।

क्रमशः अगले अंक में.....

आर्य विद्या के लिए निमन्त्रण

अबकी बार जब तुम आना
दो दिन मेरे साथ बिताना।।

दो दिन साथ बिताएंगे।
वैदिक सत्र लगायेंगे।
आर्ष सिद्धान्तों का परिचय
इसी सत्र में पाएंगे।।
दो दिन साथ बिताएंगे।

मन का भ्रम मिटाएंगे
सत्य स्वरुप को पाएंगे।
अपनी सभी शकांओं का
समाधान हम पाएंगे।।
दो दिन साथ बिताएंगे।

धर्म स्वरूप को जानेंगे
उत्तम कर्म पहचानेंगे।
जानकर अपना कर्तव्य
निभाने हेतु बढ़ जाएंगे।।
दो दिन साथ बिताएंगे।

वैदिक मार्ग अपनाएंगे
औरों को बतलाएंगे।
स्वयं श्रेष्ठ बन, राष्ट्र को
हम आर्यावर्त्त बनायेंगे।।
दो दिन साथ बिताएंगे।

– आर्य राजेश आर्यावर्त्त

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट–

www.aryanirmatrisabha.com

पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक

www.aryanirmatrisabha.com/पत्रिका पर जाएं।

01 फरवरी–01 मार्च–2018 **फाल्गुन** ऋतु– शिशिर

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
			आश्लेषा कृष्ण प्रतिपदा 1 फरवरी	मघा कृष्ण द्वितीया 2 फरवरी	पू० फाल्गुनी कृष्ण तृतीया 3 फरवरी	उ० फाल्गुनी कृष्ण चतुर्थी 4 फरवरी
हस्त कृष्ण पंचमी 5 फरवरी	चित्रा कृष्ण षष्ठी 6 फरवरी	स्वाती कृष्ण सप्तमी 7 फरवरी	विशाखा कृष्ण अष्टमी 8 फरवरी	अनुराधा कृष्ण नवमी 9 फरवरी	ज्येष्ठा कृष्ण दशमी 10 फरवरी	मूल कृष्ण एकादशी 11 फरवरी
पूर्वाषाढ़ा कृष्ण द्वादशी 12 फरवरी	उत्तराषाढ़ा कृष्ण त्रयोदशी 13 फरवरी	श्रवण कृष्ण चतुर्दशी 14 फरवरी	श्रवण कृष्ण अमावस्या 15 फरवरी	धनिष्ठा शुक्ल प्रतिपदा 16 फरवरी	शतभिषा शुक्ल द्वितीया 17 फरवरी	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल तृतीया 18 फरवरी
उत्तराभाद्रपदा शुक्ल चतुर्थी 19 फरवरी	रेवती शुक्ल पंचमी 20 फरवरी	अश्विनी शुक्ल षष्ठी 21 फरवरी	भरणी शुक्ल सप्तमी 22 फरवरी	कृतिका शुक्ल अष्टमी 23 फरवरी	रोहिणी शुक्ल नवमी 24 फरवरी	मृगशिरा शुक्ल दशमी 25 फरवरी
आर्द्रा/पुनर्वसु शुक्ल एकादशी 26 फरवरी	पुष्य शुक्ल द्वादशी 27 फरवरी	आश्लेषा शुक्ल त्रयोदशी 28 फरवरी	मघा शुक्ल चतुर्दशी/ पूर्णिमा 1 मार्च			

Rishi Dayanand - His Life And Work -Saroj Arya, Delhi

Questionable means were not left untried: he was cajoled, abused and threatened, but true to his dictum, he strongly believe in-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

(Wise men may get praise or censure, wealth may come or go; death may seize today or after centuries, but the firm-minded do not swerve a step from the right path.)

The Swami treated the small doing of the small beings with the contempt they deserved.

But the Kumbh Fair left the Swami sad and depressed. He had believed that it would afford a unique opportunity for the propagation of his ideas, but he had not judged the strength of the citadel of orthodoxy in society. How deeply it was spread. Thousands came, listened to him and left; not one seen to have the courage to support what he said. For once the shadow of doubt crossed his mind and he felt dependent. "Can I cope with this uphill task and fight the hydra headed demon of ignorance and superstition alone?"

Fortunately this fit of hopelessness did not last long, only it led to greater introspection. "Perhaps my equipment for this task is not adequate. I need more of renunciation and moral force." thought he. For this, he distributed all his belongings among his followers and sent some money with a copy of the Mahabhashya to his Guru at Mathura. This amazed his friends, but he said the needs of one who wishes to be independent must be reduced to a minimum; he must be above petty comforts and discomforts of life and should set an example for others.

The Swami now retired into solitude and public speaking and debating ceased. A regular life of tapa began. But how long was this silence to continue? There was pain in heart about poor people of this country. One day a mischief-monger approaching his hut made some derogatory remarks to the Vedas. The incensed Swami could not keep quiet and began his preaching work again. But this should not mean that there was any abatement in his tapasya. He started with new zeal, efforts and force.

The Swami started going from town to town to denounce un-vedic practices and unfold the beauties of Vedic truths. At Anupashahar a debate on idol-worship took place with Shastri Hira Vallabh Parbati. The condition of the debate was that the loser would accept the beliefs of the opponent. The Shastri, finding himself in a quandary, rose from his seat, acknowledged in the presence of the whole assembly that idolatry was false, took his idols and flung them into the Ganges. Several others followed suit, and debate ended with victorious acclamation for the great Swami.

Dayanand , like a true reformer was very unsparing in his denunciation of idolatry and equally emphatic about glorification of Vedic truths. This caused alarm in the minds of people with vested interests whose princely incomes were jeopardized by Swamiji's ruthless exposure of their practice to exploit people in the name of religion. The majority of priest class in all religion was involved in this deceitful trade. It was natural, therefore, that these people conspire to make short confession of their exposer.

To be continued...

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

सत्र में आने के पश्चात् ईश्वर, धर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य, उपासना, राष्ट्र आदि विषयों में बनी हुई मान्यताएं-धारणाएं टूट गई। इन विषयों का सत्य रूप निखरकर सामने आ गया। सत्य का प्रकाश हो गया। मैं स्वयं को भाग्यशाली समझता हूँ कि मुझे इस प्रशिक्षण सत्र में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। ईश्वर की महती कृपा है कि वह हमें सन्मार्ग पर प्रेरित कर रहा है।

मैं राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा के इस कार्य में तन-मन-धन से सहयोग करना चाहता हूँ। मैं फरीदाबाद में एक प्रशिक्षण सत्र लगवाना और आर्यों को इसमें सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करना चाहता हूँ। इसके अतिरिक्त जैसा आर्य निर्मात्री सभा का आदेश होगा वैसा करने का प्रयास करूँगा। मैं अपने परीचितों को आर्य बनाने का प्रयास करूँगा।

नामः राजेश आर्य, आयुः 44 वर्ष, योग्यता : 12वीं, पताः जवाहर कॉलोनी, फरीदाबाद, हरियाणा

Sir, Heads of to all you, सही में ऐसा लगता है कि अब तक हम एक Passive life जीने में लगे हुए थे। ये तो पता नहीं था हमारे इस धरती पे आने का कुछ लक्ष्य है। कुछ दायित्व है हमारे, और अगर यहाँ नहीं आते तो सारी Life शायद ऐसे ही चली जाती। Thanks you so much हमें सच्चाई बताने के लिए, बहुत से doubts दूर करने के लिए। अब समझ में आ गया है कि सिर्फ मरने के लिए तो पैदा नहीं हुए हैं। कुछ न कुछ तो देश के लिए भी Contribute करना है। कितने भी छोटे level पे फंसा तो है। और ये आर्य समाज सत्र सही में एक सघंर्ष है, बहुत कड़ा सघंर्ष और आप सब बिना स्वार्थ के हमारे लिए लगे हुए हैं जिन्हें आप जानते भी नहीं हो। ये सच में बहुत सकारात्मक दृष्टिकोण है। इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद, सही में आप देश बदल सकते हो। हम सब देश बदल सकते हैं। ये दो दिन पूरी जिदंगी का आईना दिखा गए। Expect नहीं किया था कि सत्र ऐसा होता है। सोचा जैसे बाकी सत्संग होते हैं वैसा ही होगा। but it's totally different कम से कम हर चीज को देखने का नजरिया तो change कर दिया, अब किसी चीज को सुन के मानने से पहले सोचेंगे तो सही। Thanks so much! रही English की बात, मानसिक गुलामी है Free होने में Time लगेगा।

नामः सुनैयना, आयुः 21 वर्ष, योग्यताः बी.एस.सी., पताः करनाल, हरियाणा

आज इस सत्र के माध्यम से मैंने वह शिक्षा प्राप्त की जो आज तक मैं अपने स्कूल तथा कॉलेज में नहीं कर पाया था। आज मैंने हमारी शिक्षा की सबसे बड़ी कमजोरी को और भी अच्छे से जाना है। मैं माननीय आचार्य जी का सदा अभारी रहूँगा। और मैं चाहता हूँ कि हमारी यह शिक्षा को स्कूल स्तर पर शामिल किया जाए ताकि मेरे पूरे राष्ट्र को इस ज्ञान की पहचान हो सके।

मैं इसमें अपना सहयोग करना चाहता हूँ कि मैं अपने प्रत्येक आर्य को शिक्षित और तर्कशील बनाना चाहता हूँ ताकि वो आपनी तर्कशक्ति से अपने और अपनी पीढ़ियों को बचा सके।

नामः प्रवीन कुमार, आयुः 27 वर्ष, योग्यताः एम.एस.सी., पताः गाँव वानी, जिला करनाल, हरियाणा

अपने देश की संस्कृति, धर्म-ग्रन्थ व वर्त्तमान परिस्थिति का ज्ञान हुआ जोकि हमें हमारे पूर्वजों ने अवगत नहीं कराया था जिसके कारण हम बहुत पिछड़े वर्ग में जिये जा रहे थे। अब दिनांक 04/02/2018 से ऐसा नहीं होगा। हम आर्य बनकर और दूसरों को आर्य बनाकर देश की हिफाजत करेंगे। जिस भी कार्य में आर्य सभा को हमारी जरूरत हो हम हमेशा तत्पर व तैयार रहेंगे।

नामः अमित कुमार, आयुः 25 वर्ष, व्यवसायः नौकरी, पताः विकास नगर, सोनीपत, हरियाणा।

॥ ऋषि मुनियों ने दिया वरदान ॥

-आचार्य देवेन्द्र दरियापुर कलाँ, दिल्ली

तेरी उपासना का भगवान, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
जिसने जानी तेरी माया, जिसने भेद तुम्हारा पाया।
उसने किया है तेरा ध्यान, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
जिसने जानी तेरी महिमा, वह ही जाना तेरी दुनिया।
तू है निराकार भगवान, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
यह संसार है तेरा बनाया, यह तेरे अन्दर है समाया।
करते ऋषि मुनि सब ध्यान, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
तू है गुल में तू बुलबुल में, तू हर शाख में तू हर पात में।
तू कण-कण में है भगवान, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
सागर तेरी शान बढ़ाये, पर्वत तेरी शोभा गाये।
तेरे कर्म अनुपम महान, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
कर्मों ने राजा रंक बनाये, भिक्षुक भी राज बिठाए।
तेरी सृष्टि कर्म प्रधान, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
अद्भुत है जग की माया, जिसने है सबको भरमाया।
कर कुछ जीवन का कल्याण, ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।
जीवन को श्रेष्ठ बनाओ, नित्य उपासना कर्म अपनाओ।
जो हो जीवन का उद्धार, ऋषि-मुनियों ने दिया वरदान।।
ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।। ऋषि मुनियों ने दिया वरदान।।

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।